कहानी

अतिक्रमण

महेन्द्र तिवारी

सुबह का वक्त था. ठंडी हवा में कोहरे की हल्की चादर थी.प्लेटफॉर्म पर चाय वालों की आवाज़ें गूँज रही थीं....चाय. गरम चाय. ट्रेन धीरे-धीरे सरक रही थी, जैसे अभी नींद से पूरी तरह जागी न हो. हमें दिल्ली जाना था. मैं अपने बैग को सिरहाने रखकर साइड लोअर बर्थ पर बैठा था. पत्नी ऊपर की बर्थ पर थी.

ट्रेन खुली तो मैंने अखबार फैलाया. खबरों में वही था हत्या-लूटमार, भ्रष्टाचार और नेताओं की बयानबाजी . मुझे लगा यही देश का चक्र है हर दिन वही खबरें, बस तारीख़ बदल जाती है.

थोड़ी देर बाद मैं टॉयलेट के लिए उठा. प्लेटफॉर्म पीछे छूट गया और सुबह की हवा में डिब्बे का शोर घुल गया. जब मैं लौटा तो देखा मेरी सीट पर पाँच लोग बैठे हुए थे. सबकी उम्र पैंतीस से पचास के बीच रही होगी.

मैंने विनम्रता सेकहा, भाई साहब, यह मेरी सीट है. साइड लोअर.

उनमें से एक ने चाय का प्याला होंठों से हटाकर कहा, थोड़ी देर की तो बात है, बैठ जाइए कहीं .

मैंने मुस्कराते हुए टिकट दिखायादेखिए, यह मेरी रिज़र्व सीट है.

दूसरा आदमी बोला, अरे भाई, ट्रेन तो सबकी है, थोड़ा एडजस्ट कर लीजिए.

मैंने कहा, मगर रिज़र्वेशन का मतलब तो यही है कि जिसकी सीट है, वही बैठेगा.

तीसरे ने कहा, रिज़र्वेशन सिस्टम ही गलत है, गरीब आदमी कैसे चलेगा?

मैं चुप रहा. क्या कहता? तभी उनमें से एक उठा और कहने लगा, मैं ज़रा टॉयलेट होकर आता हूँ.

मैंने सोचा, मैंने सोचा, यही अच्छा मौका है, अब मेरी सीट मिल जाएगी. मैं जैसे ही बैठने लगा, उसके बगल वाले ने कहा, वो अभी आ जाएगा.

मैंने कहा, लेकिन यह मेरी सीट है.

वह बोला, क्या हुआ अगर तुम्हारी है, थोड़ी देर में खाली हो जाएगी, तो बैठ जाना.

उसकी आवाज़ में बेपरवाही थी.

मैं कुछ पल खड़ा रहा. लगा, बोलने से भी कुछ हासिल नहीं होगा. लेकिन मन के अंदर गुस्से का गुब्बार उबल रहा था.

तभी मेरी पत्नी ऊपर से बोली, छोड़िए न, क्यों उलझ रहे हैं, ये सभी गुंडे हैं., उसकी आँखों में डर था.

मैंने कहा, पर सीट मेरी है, मैं खड़ा क्यों रहूँ?

वो बोली, तो क्या सीट के लिए इन गुंडों से लड़ोगे?

उसकी बात में सच्चाई थी, पर उस सच्चाई को स्वीकार करना आत्मसम्मान पर चोट जैसा लग रहा था.

उसी वक्त उन लोगों में से एक थोड़ा शर्मिंदा होते हुए बोला, हम गुंडे नहीं हैं.

मैं उसकी ओर देखते हुए कहा, गुंडे नहीं हैं, पर किसी की सीट पर निर्लज्ज होकर कब्ज़ा जमाए हुए हैं.

वो हँस पड़ा और ज्ञान देने लगा, अरे भाई, देश में इतनी बड़ी-बड़ी समस्याएँ हैं, तुम सीट की बात कर रहे हो?

अब बात बदल गई थी. अब वे पाँचों देश-दुनिया की चर्चा में लग गए. किसी ने अखबार खोला, किसी ने मोबाइल पर न्यूज़ चलाया.

देखो सरकार क्या कर रही है! एकबोला.

कुछ नहीं कर रही, दूसरे ने जोड़ा, सारे नेता चोर हैं.

हम लोग उनसे अच्छी तरह देश चला सकते हैं, तीसरे ने कहा, बस एक मौका मिलना चाहिए.

वे अब पूरी गंभीरता से बहस कर रहे थे महंगाई, विदेश नीति, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार हर विषय पर. उन्हें त्वरित न्याय प्रक्रिया में विश्वास था.

मैं खड़ा उनका प्रवचन सुनता रहाऔर सोचता रहा कि जिन्हें अपनी नैतिकता का बोध नहीं, वे देश के नेताओं की नैतिकता की चिंता कर रहे हैं.

ट्रेन आगे बढ़ती जा रही थी. लोग अपने काम पर जाने के लिए अपने हाथों में टिफिन लिए सीटों के बीच खड़े थे. मुझे धीरे-धीरे यह एहसास हुआ कि ये कोई आम लोग नहीं हैं, ये रोज़ सुबह ऑफिस जाने वाले लोग हैं. सरकारी विभागों के कर्मचारी. ये हर दिन इसी तरह ट्रेन पकड़ते हैं, इसी तरह दूसरों की सीटों पर बैठते हैं और अपनी शान समझते हैं.

मुझे अब समझ में आने लगा था कि इनके लिए यह सब इनकी आदत बन चुका है. दूसरों के सीटों पर कब्ज़ा करके बैठना अब इनके जीवन का सामान्य हिस्सा बन गया है.

कभी-कभी उनमें से कोई मेरी ओर देख लेता, फिर नजरें फेर लेता. जैसे मैं कोई अस्तित्वहीन चीज़ हूँ ट्रेन की दीवार का एक हिस्सा.

मेरी पत्नी ने धीरे से कहा, ऊपर आ जाइए, खड़े क्यों हैं?

मैंने कहा, नहीं, मैं यहीं ठीक हूँ. जब ये उतर जायेंगे, तब मैं यहीं बैठ लूंगा.

उसने कुछ नहीं कहा. शायद जानती थी कि मैं भीतर से आहत हूँ.

दो घंटे बीत गए. वे लोग हँसते-बोलते रहे. किसी ने कहा, आज दफ्तर में फाइल साइन करवानी है.

दूसरे ने फोन पर किसी को बताया, साहब आ जाएं तो कह देना कि मैं ट्रैन में हूँ.

तीसरे ने कहा, कौन रोज़ इतना काम करता है, तनख्वाह तो उतनी मिलती नहीं.

मैंने सोचा, यही तो हमारे समाज का चेहरा है, जहाँ हर कोई जिम्मेदारी से बचने का अभ्यास कर चुका है.

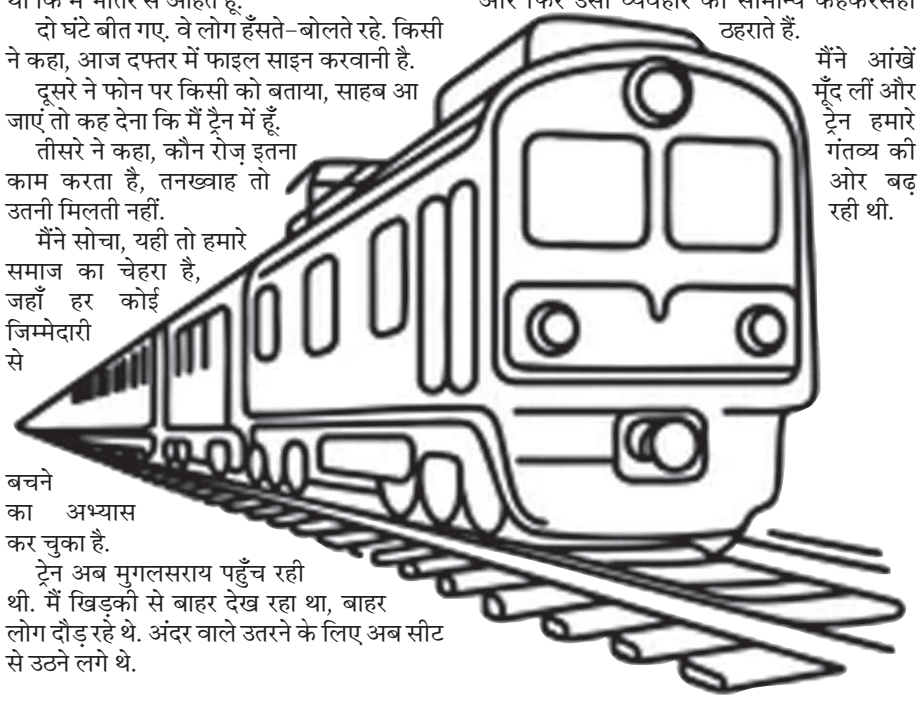

ट्रेन अब मुगलसराय पहुँच रही थी. मैं खिड़की से बाहर देख रहा था, बाहर लोग दौड़ रहे थे. अंदर वाले उतरने के लिए अब सीट से उठने लगे थे.

अचानक उनमें से एक बोला, चलो भाई, अपना तो डेस्टिनेशन आ गया.

वे उठे और अपने बैग सँभाले. जाते-जाते बोलने लगे, भाई साहब, बुरा मत मानना, हमें भी अपने ऑफिस पहुँचने की जल्दी रहती है.

मैं बस उनकी हाँ में हाँ मिलाने के लिए अपना सिर हिलाया. क्या कहता?

उनके उतरते ही मैंने अपनी सीट पर बैठते हुए महसूस किया, जैसे ट्रेन का बोझ हल्का हो गया हो.

मेरी पत्नी ने नीचे आकर कहा, अब चैन मिला?

मैं मुस्कराया, हाँ, पर दो घंटे की परीक्षा पास करनी पड़ी.

ट्रेन अब चल पड़ी थी. अब कोच कुछ खाली लगने लगी थी, पर मन में उधेड़-बुन जारी थी.

मैं खिड़की से बाहर देखने लगा. धूप पूरी तरह फैल चुकी थी. खेतों से अब ओस की नमी गायब होने लगी थी.

वो पाँच आदमी उतर चुके थे. उनकी छवि मेरे भीतर घर कर गई थी एक ऐसे समाज की, जहाँ शिक्षित लोग असभ्य होने में गर्व महसूस करते हैं और फिर उसी व्यवहार को सामान्य कहकरसही ठहराते हैं.

मैंने आंखें मूँद लीं और ट्रेन हमारे गंतव्य की ओर बढ़ रही थी.

क्लास by बड़े भाई

प्रयास कभी बेकार नहीं होते

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

कभी आपने मटकी फोड़ प्रतियोगिता देखी है? देखी ही होगी जिसमें बहुत से युवा मिलकर समूह के एक युवा को इतना ऊपर उठाते हैं कि वह ऊपर डोरी में लटकी हुई मटकी तक पहुंच कर उसे फोड़ सके. कितना अच्छा लगता है न? खैर, यह आर्टिकल आप से मटकी फोड़ कार्यक्रम का आनंद पूछने के लिए नहीं है बल्कि कुछ और पूछने के लिए है और उससे एक बेहतर संदेश समझने के लिए है.

छोटे भाई, उस पिरामिड पर विचार करें जिसके सहारे समूह का वह युवा मटकी तक पहुंचता है. कितने लोग उस एक युवा को मिलकर वहां तक पहुंचाते हैं और तब जाकर मक्खन की मटकी उस समूह के हाथ में आती है और वह विजेता होता है.

विचार करिए, क्या अकेला वह युवा जिसके हाथ में पदक है,वो अकेला उस मटके तक पहुंच सकता था ? नहीं न.इसमें समूह के सारे लोगों की कितनी अहम भूमिका थी, उसको वहां तक पहुंचाने में.

कहना यह चाहता हूं कि जो हमारे प्रयास हमारा लक्ष्य भेदने में हमें सफलता नहीं दिला पाते, ऐसा नहीं है कि वो बेकार जाते हैं बल्कि आप उन सारे प्रयासों में हुई गलतियों से सीखते चलते हैं और उसे सुधारते चलते हैं और इनसे बने पिरामिड पर आपकी जीत का पदक होता है

छोटे भाई हम कुछ प्रयासों में हार मान लेते हैं लेकिन यदि प्रयास बड़ा है तो पूरी संभावना है कि एक प्रयास में ना हो. तो प्रयासों की सफलताओं से निराश मत होइए. उससे सीखिए और आगे बेहतर के लिए प्रयास करिए तो याद रखिए प्रयास पिरामिड बनाते हैं आपके पदक के लिए. आपके एक प्रयास के हाथ में इन्हीं प्रयासों से बने पिरामिड से पदक होगा और आप विजेता होंगे.

बस यही कहना था, धन्यवाद.

आयोजन

लोककथाओं में बसती है देश की आत्मा

हिमांशु कुमावत

'सफरनामा - यात्रा से शब्द तक'

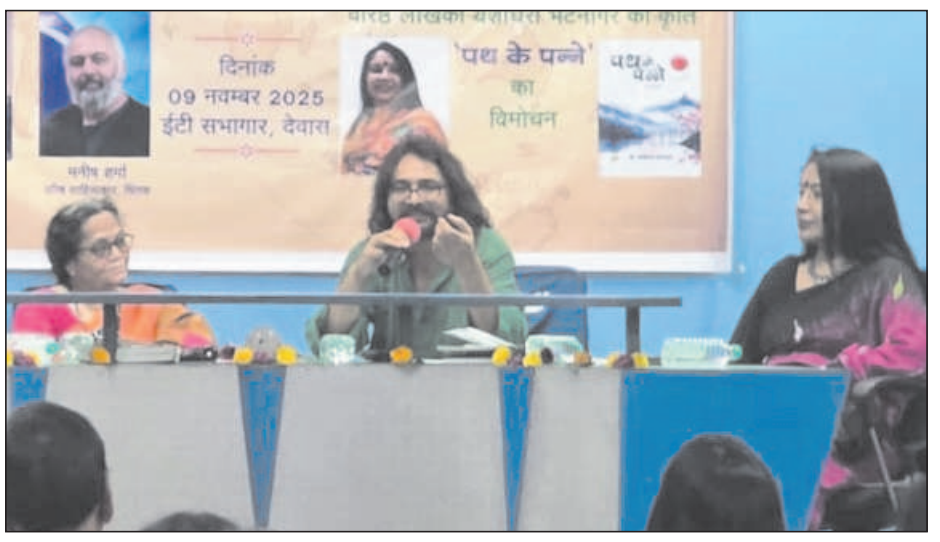

प्राचीन काल में यात्राएँ केवल जीवन-यापन के साधन तक सीमित थीं. भोजन, पानी और निवास की खोज में मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक गतिशील रहता था. धीरे-धीरे उसने अपनी यात्राओं को चिन्हों, प्रतीकों और फिर शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करना शुरू किया और यहीं से यात्रा-कथा का आरंभ हुआ. लेखन के साथ यात्राएँ अनुभवों का दस्तावेज़ बन गईं. कभी वे ताड़पत्रों पर उकेरी गईं, कभी लोकगीतों में गूँज उठीं और फिर शब्दों ने उन्हें यात्रा-वृत्तांत के रूप में रूपायित किया.

इसी यात्रा-वृत्तांत परंपरा को नए परिप्रेक्ष्य में देखने का सुंदर प्रयास हुआ देवास में, जहाँ मध्य भारत में यात्रा साहित्य विधा पर केन्द्रित पहला और अनूठा साहित्यिक आयोजन 'सफ़रनामा - यात्रा से शब्द तक' ईटी सभागार में सम्पन्न हुआ. देश के प्रतिष्ठित यात्रावृत्तांतकारों की उपस्थिति में यहाँ यात्रा लेखन के विविध आयामों पर सार्थक संवाद हुए.

मुख्य वक्ता डॉ. अजय सोडानी ने कहा, देश की आत्मा इतिहास की पोथियों में नहीं, बल्कि लोककथाओं और जनश्रुतियों में बसती है. उन्होंने यह भी जोड़ा कि विकास की आड़ में आज सबसे अधिक प्रभावित हमारी प्रकृति और उसका सहज जीवन हुआ है. नई दिल्ली से आए प्रसिद्ध ट्रैवल ब्लॉगर और लेखक संजय शेफर्ड ने कहा कि यात्रा साहित्य को नए दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है. उनके शब्दों में जिज्ञासा यात्रा-वृत्तांत का पहला घटक है; लेखन से पहले पढ़ना ज़रूरी है, क्योंकि रचना अनुभव, लोक, ज्ञान और दृष्टि से मिलकर बनती है. यात्रा लेखिका महिमा वर्मा ने यात्रा लेखन की बारीकियों पर बोलते हुए कहा कि हर स्थान की अपनी एक कहानी होती है, यदि हम उसे अपने शब्दों में सजीव कर सकें, तो वही लेखन विशिष्ट बनता है.

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रही विदुषी शास्त्रीय गायिका संजीवनी कान्त ने कहा कि ऐसे आयोजन न केवल यात्रा साहित्य को नई दिशा देते हैं, बल्कि लेखकों को प्रेरणा भी प्रदान करते हैं. मनीष शर्मा ने कहा, भारतीय संस्कृति में जीवन स्वयं एक यात्रा है और मृत्यु उसका गंतव्य. यात्रा साहित्य वह माध्यम है जो उन अनुभवों को साझा करता है, जो स्वयं यात्रा नहीं कर सके. इस अवसर पर यशोधरा भटनागर की यात्रा-वृत्तांत पुस्तक 'पथ के पन्ने' का विमोचन भी किया गया.

मुख्य सत्र का संचालन मनीष वैद्य ने किया. सह-मॉडरेटर के रूप में शर्मिला ठाकुर, अमेय कान्त और रश्मि शर्मा शामिल रहे. कार्यक्रम संचालन तनिष्का वैद्य, आभार प्रदर्शन सुमन कुमावत, अतिथि परिचय नीलम दुबे, स्वागत भाषण मीनाक्षी दुबे, तथा इकाई की गतिविधियों की जानकारी मंजू जैन ने दी.

अतिथियों का स्वागत प्रकाश कान्त, सुनील चतुर्वेदी, प्रताप सिंह सोढ़ी, हिमांशु कुमावत, संदीप भटनागर, उमेश अग्रवाल, शकुंतला दुबे, उर्वशी उपाध्याय, नरेश कानूनगो, सुधीर सोमानी, भावेश कानूनगो, सुधीर महाजन, संजय जोशी, संतोष स्वर्णकार, श्रीकांत तैलंग, छाया कानूनगो, शिरीन भावसार, बिंदु तिवारी एवं कविता नागर ने किया. सुधी श्रोताओं की उपस्थिति, शानदार वक्तव्य, टीम की सक्रियता, जीवंत संवाद सत्र और समयबद्ध व्यवस्थाएँ इन सबने मिलकर इस आयोजन को सार्थक और अविस्मरणीय बना दिया. विभिन्न माध्यमों से मिल रही निरंतर सराहना से यह आयोजन अब एक नए आयाम को छू रहा है, और इसकी गूँज पूरे देश में सुनाई दे रही है.

कविता

मुझे मालूम है

संदीप राशिनकर

मुझे मालूम है
हर बार कुछ भी
बोलने से पहले
मन ही मन
तुम कुछ गढ़ते हो
हानि - लाभ जोड़ते हो
फिर कुछ बोलते हो
रिश्तें हो
या औपचारिकता
पैमाने पर स्वार्थों के
उन्हें टटोलते हो ,
तौलते हो
फिर कुछ बोलते हो
ठहाके लगाना है
हंसना है
या सिर्फ मुस्कुराना ?
सोचते हो , जांचते हो
तदनुसार ही फिर
होठों को संकुचाते हो
फैलाते हो
फिर हंसते हो !
माना मेरे मित्र
अर्थ महत्ता के समय में
जोड़ - घटाव के लय में
तुमने
पा ली है विशेष योग्यता
मगर तुम ,
तुम्हारी मौलिकता
तुम्हारी सहजता
दिनोदिन
खोते जा रहे हो
और भूल
मनुष्य होने का सच
गणित का क्लोन
होते जा रहे हो !!

लघु कथा

चींटियां

मार्टिन जॉन

ओफ्फ़ हो ... फिर आ गई ! ...ये लाल वाली छोटी चींटियां बहुत परेशान कर रही हैं. कल ही तो उसने किचन की सफ़ेद दीवार पर अपनी सूनी मांग की तरह लकीर बनाती चींटियों को भगाई थी, दीवार पर अंगुलियों से ठोकते हुए. दीवार पर और ओवेन के इर्द-गिर्द स्प्रे भी किया था उसने, ताकि वे दुबारा न आएं.

अचानक अपनी खुली पीठ पर किसी मर्द की खुरदरी और सख्त अंगुलियों वाली बड़ी चींटी के रेंगने के एहसास से वह बुरी तरह चिहुंक गई. बड़ी चींटी से वह भयभीत हो जाती है. उसका डंक बेहद पीड़ादायक होता है. ऐसी चींटियों के प्रति नफरत का भाव उसमें हमेशा से रहा है. पीठ पर रेंगती बड़ी चींटी अपने पैरों से डंक की धार तेज़ कर ही रही थी कि उसने बड़ी तेज़ी और मजबूती के साथ अपने दाहिने हाथ को पीछे मोड़कर उसे अपनी हथेली के कब्ज़े में ले लिया. फिर उसने दांत किटकिटाते हुए बुरी तरह मसलकर किचन के बाहर फेंक दिया. चींटी को इस तरह मसले जाने से उसकी हथेली एक अज़ीब क़िस्म की चिपचिपाहट से भर गई. चिपचिपाहट के एहसास से उसे उबकाई आने लगी. तत्काल उसने वॉशबेसिन में अच्छी तरह हाथ धोया और अपनी साडी के आंचल से हाथ पोंछती हुई बच्चों के स्टडी रूममें चली आई. मम्मा, बड़े पापा आए थे अभी-अभी...कहां चले गए इतनी ज़ल्दी ? हमने चींटी को मसल दिया बेटे...और कभी नहीं आएंगे. इस अटपटे ज़वाब का मतलब समझने की कोशिश में अचंभित बच्चे अपनी मां की ओर ताकते रह गए.

घणी गई, थोड़ी रही

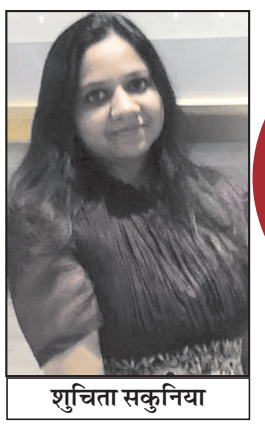

शुचिता सकुनिया

घणी गई थोड़ी रही.

मारवाड़ी की यह छोटी-सी पंक्ति जीवन का सबसे सच्चा चित्र खींच देती है.

अक्सर जिंदगी की जद्दोजहद में हम निराश हो जाते हैं, थक जाते हैं और सोचते हैं — आखिर कब तक. मेरी परेशानी कब खत्म होगी. इतनी परीक्षा क्यों.

हम सब अपनी किसी न किसी परिस्थिति में महसूस करते हैं कि बहुत कुछ बीत गया, बहुत कुछ हाथ से निकल गया — समय, लोग, सपने, अवसर. पर जो थोड़ा बचा है, वही हमारा सहारा है, वही हौसला, वही उम्मीद.

भगवान ने इंसान की जिंदगी ही ऐसी बनाई है कि सुख भी भोगने हैं और दुख भी. जैसे हर घनी रात के बाद सबेरा आता है, वैसे ही हर बुरे दिन के बाद अच्छे दिन जरूर आते हैं. कई बार हम थक जाते हैं, टूट जाते हैं और लगता है कि अब और नहीं. वहीं यह पंक्ति हमें संभाल लेती है —

घणी गई थोड़ी रही.

यानी दुख का बड़ा हिस्सा जा चुका है या गुजर रहा है, अब बस थोड़े दिन औरज और फिर उजाला लौट आएगा.

पर हम अक्सर भूल जाते हैं कि हर मुसीबत से लड़ने की सबसे बड़ी ताकत है सकारात्मकता. मन में रोशनी रहे तो अंधेरा कभी स्थायी नहीं होता. सकारात्मक सोच वही शक्ति है जो अंधेरे कमरे में भी रोशनदान ढूंढ लेती है और कहती है — आज मुश्किल है, पर कल आसान जरूर होगा.

समय भी अपना काम चुपचाप करता है — घाव भरता है, दर्द हल्का करता है, इंसान को मजबूत बनाता है. जब पीछे मुड़कर देखते हैं, तो एहसास होता है कि बहुत कुछ घणा बीत गयाज और आज जो थोड़ा बचा है, उसी ने हमें संभाला, सिखाया और आगे बढ़ाया.

जिंदगी इस पर नहीं टिकी कि क्या चला गया. हमारा भविष्य इस पर टिका है कि आज हमारे पास जो थोड़ा है — हम उसे कैसे जीते हैं, कैसे संवारते हैं. मन अक्सर उसी के पीछे भागता है जो खो चुका है, जबकि बुद्धि उसी पर ध्यान देती है जो बचा है. हम ज्यादातर मन की सुन लेते हैं और बुद्धि को अनसुना कर देते हैं. पर शांति तभी मिलती है जब मन और बुद्धि दोनों वर्तमान में टिकें — क्योंकि यही थोड़ा बचा वर्तमान ही हमारी असली ताकत है.

दुनिया से लड़ना आसान होता है, पर खुद से लड़ना सबसे कठिन. अपने डर और चिंता को जीत लेने वाला इंसान किसी भी बाहरी संघर्ष से हारता नहीं. वही थोड़ा-सा बचा हौसला हर चुनौती में जीत दिलाता है.

जीवन का सार, संघर्ष और उम्मीद

जिंदगी चाहे जितना ले जाए, वह थोड़ी-सी उम्मीद हमेशा छोड़ जाती है. सूरज जब ढलता है, तो आकाश में थोड़ा उजाला छोड़ देता है — वही उजाला हमें अगली सुबह तक खींच ले जाता है.

बहुत कुछ घणा चला जाता है — लोग, समय, सपने, अवसर. पर जो थोड़ा बचा है — वही सबसे कीमती है, वही हमारी सीख है, यात्रा है, ताकत है.

घणी गई थोड़ी रही — और अक्सर यही थोड़ी-सी उम्मीद पूरी दुनिया बदल देती है.

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी